शेषेन्द्र शर्मा

जन्म 20 अक्तूबर, 1927—नागराजुपाडु, ज़िला—नेल्लूर (आन्ध्र प्रदेश); **मातृभाषा** तेलुगु; **शिक्षा** बी० एस-सी० (आन्ध्र विश्वविद्यालय), एल-एल० बी० (मद्रास विश्वविद्यालय); **व्यवसाय** भूतपूर्व उप-कमिश्नर, हैदराबाद नगर निगम; **पुरस्कार-सम्मान** विज़िटिंग प्रोफ़ेसर, वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय—1977; **प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ : कविता** ऋतुघोष, शेष ज्योत्सना, समुद्र ना पेरू, नेनू ना नेमिली ना राष्ट्रं, ना देशं ना प्रजलु—1975 गुरिल्ला, मंडे सूर्यडु, **लेखकीय डायरी** रक्तरेखा—1974 **समीक्षा** षोडशी, स्वर्णहंस, साहित्य-कौमुदी, कविसेना मेनिफेस्टो—1978, इन डिफ़ेन्स ऑफ़ पीपल एण्ड पोएट्री—1977; अनेक स्वदेशी और विदेशी भाषाओं में अनूदित; **हिन्दी-संस्करण** मेरी धरती मेरे लोग, दहकता सूरज, गुरिल्ला, प्रेमपत्र ।

शेषेन्द्र शर्मा

मानव की त्रासगाथा का काव्य

शेषेन्द्र शर्मा तेलुगु के ही नहीं, समूची मानवता के कवि हैं। उनका कथन है कि "जब कभी मैंने आवाज़ उठायी तो अपने लिए नहीं, तेलुगु जगत् के सिर्फ़ छह करोड़ लोगों के लिए भी नहीं, बल्कि देश के साठ करोड़ लोगों के लिए सदा मेरी आवाज़ समर्पित रही है। जो बाधाएँ मैं अनुभव कर रहा हूँ, सारा देश भी वही बाधाएँ अनुभव कर रहा है, और मेरी जाति भी—अर्थात् मानव-जाति। इस कारण मेरी ज्वाला मेरे देश की जिह्वा है।" उनकी काव्य-कृतियों की जो विशेषता सर्वाधिक आकृष्ट करती है वह है कविता के माध्यम से भारतीय जनमानस की गहराइयों में रचे-पचे शाश्वत चिन्तन-मनन की आधुनिक परिवेश में पूरी प्रासंगिकता के साथ सशक्त अभिव्यक्ति। यह भारतीय वाङ्मय के गहन मनन-मन्थन का ही सुफल है। इसमें आगे बढ़कर उन्होंने विश्व-काव्य का भी गहरा अध्ययन किया है। शेषेन्द्र मानते हैं कि ज्ञान सिर्फ़ एक भाषा से बँधा नहीं रहता, किसी एक देश का नहीं होता, किसी एक काल का नहीं होता। वह सार्वभौम और सार्वकालिक होता है।

हिन्दी के यशस्वी कवि नरेश मेहता के इस विवेचन में सचाई है कि "शेषेन्द्र शर्मा निर्वेद के नहीं, शक्ति के तथा तनाव के कवि हैं। कवि-रूप में वे सदाशिव भी हैं और त्रिमूर्ति भी। उनमें प्रकृति है, पर वह मात्र उपादान भाव में नहीं, बल्कि रम्य और पुरुष दोनों रूपों में है, इसलिए वह सक्रिय शक्ति लगती है। चीज़ों को देखने की उनकी आर्ष दृष्टि उन्हें अपने सर्वप्रिय कवि वाल्मीकि से तथा अन्य देशी-विदेशी क्लासिकीय कवियों से प्राप्त हुई है, इसलिए वे आद्यन्त क्लासिकीय कवि ही कहे जा सकते हैं। वे जानते हैं कि सृष्टि का मूलाधार मनुष्य है, जो निरन्तर उदात्त होने की प्रक्रिया में जयी भी होता है और पराजित भी। मनुष्य की यह अदम्य इच्छा ही सदा से क्लासिकीय काव्य का केन्द्रीय सरोकार रही है। शेषेन्द्र का सारा काव्य मनुष्य की त्रास-गाथा का महाकाव्य है।"

उनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं 'ऋतुघोष', 'शेष ज्योत्सना', 'गुरिल्ला', 'समुद्र

ना पेरू', 'नेनू ना नैमित्री' ना राष्ट्र', 'ना देशं, ना प्रजलु'। 'प्रेम लेखलु' और 'इन डिफ़ेन्स ऑफ़ पीपल एण्ड पोएट्री' उनके पत्र-संग्रह हैं। 'रक्तरेखा' नाम से उनकी नोटबुक छपी है और समीक्षा-पुस्तकें हैं 'षोडशी', 'स्वर्णहंस', 'साहित्य-कौमुदी'। उन्होंने नाटक भी लिखे हैं और कहानियाँ भी। यदि महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा में न अटकें तो उनके प्रसिद्ध काव्य 'मेरी धरती : मेरे लोग' को आधुनिक महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। इस काव्य में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की विभीषिका को, जनमानस के हृदयविदारक मोहभंग को तथा उससे उत्पन्न कटुता-कुण्ठा को सशक्त वाणी मिली है : "जब किसी ने पुकारा उषा, उषा, तो गाँव के तमाम लोग / देखने के लिए घरों से बाहर आ गए / तमाम गाँव के दरवाज़े / बड़ी उत्सुकता से खुले / किन्तु उन्होंने पाया कि सूर्य के बजाय वहाँ सूर्यग्रहण है।" 'दहकता सूरज' नामक काव्य-संग्रह में शेषेन्द्र की चुनी हुई स्फुट कविताएँ संकलित हैं। 'गोरिल्ला' उनकी लम्बी कविता है जिसमें उन्होंने मानव के आदिम पुरुषत्व को 'गोरिल्ला' की संज्ञा दी है और मनुष्य के स्वाभिमान की रक्षा के लिए उसका आह्वान किया है।

शेषेन्द्र जी के साथ साहित्य पर और विशेष कर उनके अपने काव्य पर चर्चा करने का अपना ही आनन्द है। वह एक प्रकार से सारस्वत अवगाहन होता है। हैदराबाद के विशाल और सुरुचि सम्पन्न ज्ञान बाग़ महल में उनसे मुलाक़ात हुई तो उनके काव्य पर भी बात चल निकली। मैंने पूछा, "आपने एक पत्र में ज़ोर देकर कहा है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ही कवि नहीं होता। इसी प्रकार, क्या आप यह भी मानते हैं कि कविता अपने-आप प्रस्फुटित नहीं होती, बल्कि रची जाती है? कुछ लोगों का कहना है कि कविता रची नहीं जाती, वह कवि के भीतर से चश्मे के समान फूटती है। आपने तो अनेक कविताएँ रची हैं और महाकाव्य भी तथा वे लोकप्रिय भी हुए हैं। कविता की रचना-प्रक्रिया के बारे में अपने व्यक्तिगत अनुभव बताने की कृपा करें, अपनी किसी कविता के सन्दर्भ में।"

प्रश्न में गहरा गोता लगाते हुए शेषेन्द्र बोले, "सिर्फ़ मेरे अनुभव ही नहीं, अगर हम दूसरे महान् कवियों का काव्य देखें, जैसे—वाल्मीकि या पाश्चात्य कवियों में होमर जैसे महान् कवियों के या आजकल के आधुनिक महाकवियों के काव्य को पढ़ें तो यह समझ में आता है कि वे लोग सिर्फ़ जन्मतः ही कवि नहीं थे। इन कवियों के बारे में सोचने से और मेरे अपने अनुभव से भी यह साबित हुआ है कि कवि बनने के लिए इन्सान को कुछ विशिष्ट प्रयत्न करना पड़ता है। स्वभावतः उसमें कवित्वपन शायद होगा। 'जैनेटिक इन्हेरिटेंस' की वजह से या किसी और वजह से, किसी में कवित्वपन स्वभावतः रह भी जाए, तो भी यदि वह स्वयं कुछ प्रयत्न नहीं करता तो वह विकसित रूप से कवि नहीं बन सकता।

"अपने बारे में, मैं उस अर्थ में समझता हूँ कि मैं पहले कवि नहीं था। मेरे प्रारम्भ के दौर में, यानी सोलह साल की उम्र से पहले मैं देखूँ तो मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैं पहले कवि नहीं था, जिस अर्थ में अब 'कवि' शब्द के बारे में सोचता हूँ। फिर मैं कवि कब और कैसे बना ? क्या वजह थी मेरे कवि बनने की ? मैंने आत्मचिन्तन किया तो देखा कि मेरे कवि बनने के पीछे जाने-अनजाने कुछ कोशिश थी। कवि बनना मेरे लिए ऐसा है कि मेरी दृष्टि सारे जगत् के बारे में बदल जाना यानी मेरे परिवेश के बारे में और हर चीज़ जो सृष्टि में एक पेड़ से लेकर, एक नक्षत्र से लेकर इन्सान तक के बीच जितनी भी चीज़ें आती हैं, उन तमाम चीज़ों के बारे में मेरी दृष्टि बिल्कुल अलग और एकदम नयी हो जाती है। सब चीज़ें अजीब-सी दिखने लगती हैं। जब तक वह दृष्टि ऐसी अलग से नहीं बनेगी तब तक आप कवि नहीं बन सकेंगे। कवि कहने के लायक नहीं होंगे।

"फिर यह रूपान्तरण कैसे होता है ? किसी चीज़ में या दैनिक जीवन की किसी घटना में आप गहरे डूब जाते हैं। जब से आप, ऐसे डूब जाने लगते हैं तब से आप एक ख़ास निगाह के साथ और एक विशिष्ट बोध के साथ जीवन में 'इन्वाल्व' हो जाते हैं, बिल्कुल तल्लीन हो जाते हैं। जब से तल्लीनता की यह प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है, आपमें एक परिवर्तन भी शुरू होने लगता है, यानी आपकी ज़िन्दगी बुनियादी तौर पर बदल जाती है। इसका फल क्या होता है ? आप हर एक छोटी-सी घटना से बिल्कुल तिलमिला जाते हैं। इतनी चोट लगती है आपके दिल और दिमाग़ पर कि आपकी नज़र पूरी दुनिया को अलग दृष्टि से देखने लगती है। पेड़, पेड़ ही नहीं दिखता, पंछी, पंछी ही नहीं दिखता, इन्सान इंन्सान ही नहीं दिखता; पेड़ में और कुछ दिखता है, पंछी में और कुछ दिखता है, इन्सान भी जो आपके चर्मचक्षु के सामने है, इन्सान नहीं दिखता है। उसके अन्दर की बात दिखने लगती है। वस्तु जो हमारे सामने है उसके अन्दर जो एक और वस्तु रहती है, वह वस्तु दिखने लगती है। वस्तु में एक और वस्तु, इन्सान में एक और इन्सान जब दिखने लगता है उस कमाल से, उस नयी नज़र से ही कवि का जन्म शुरू होता है, और इसी प्रक्रिया में से उभरते हैं असंख्य बिम्ब अलंकार और प्रतीक। यही है काव्यतन्त्र।

"मिसाल के तौर पर एक फ्रेंच कवि को लें। भारतीय कवि की पंक्ति भी ले सकता हूँ, लेकिन आजकल रिवाज ऐसा है कि अगर आप एक पाश्चात्य कवि का उदाहरण देते हैं तो लोग ख़ुश हो जाते हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि पाश्चात्य कवि हो या भारतीय कवि, बात एक ही है। इसलिए मैं एक फ्रेंच कवि शायद पोल राक्स की पंक्तियाँ लेता हूँ : A simple man, scattering himself through his flute, descends the adolescence of the hills. इतनी पंक्तियाँ ही बहुत हैं हमारे उदाहरण के लिए। अब इसे देखिए। एक आदमी एक

पर्वत से नीचे उतर रहा है, बस इतना ही देखते हैं आदमी के चर्मचक्षु। लेकिन जब एक कवि देखता है तो वह आदमी को ही नहीं, बल्कि 'सिम्पल' आदमी को देखता है। क्या है वह करिश्मा? चर्मचक्षु आदमी को देखते हैं, सिम्पल को नहीं देखते। इस सिम्पल को तो कवि ही देख सकता है; सिम्पल यानी सरलता जो एक गुण है और वह गुण अदृश्य ही रहता है। वह सिम्पल आदमी क्या कर रहा है? अपने अधरों से लगी हुई बाँसुरी के रन्ध्रों से वह अपने-आपको चारों तरफ़ बिखेर रहा है। इसकी यदि तफ़सील से व्याख्या करूँ तो आप जब ये पंक्तियाँ सुनेंगे तो आपके अन्दर जो एक आह्वान महसूस हो सकता है वह मिट सकता है।

"कविता की महिमा ही यही है। कविता से व्याख्या तक एक सर्जरी है। जैसा कि आप कविता को टेबल पर लिटाकर उसकी शल्यक्रिया करें, वैसी ही प्रक्रिया है यह कविता की व्याख्या। कविता सुनने से ही आस्वाद मिलता है। जैसा कि महान् अँग्रेज़ी कवि इलियट ने कहा—A poem communicates itself before it is understood. तो कविता में जो एक करिश्मा है उसे शब्द से शब्द तोड़कर, निकालकर अलग करके समझने की ज़रूरत नहीं है, उसकी महिमा महसूस होती है एक मन्त्र की तरह। इसलिए बाँसुरी बजानेवाला अपने-आपको बाँसुरी से बिखेर रहा है चारों ओर। उसका गाना जो उसकी अपनी आत्मकथा है उसे ही वह चारों ओर बिखेर रहा है। यह कला जो चारों ओर बिखेरी जा रही है वह उस आदमी का रूपान्तरण है। यहाँ आदमी बदल जाता है एक कलात्मक मधुर स्वर में।

"एक प्रसिद्ध स्पेनिश कवि लोर्का ने कहा है कि कविता तो एक इमोशनल जर्नी है, जिसे खत्म करने के बाद कवि समाहित स्थिति में आ जाता है और उस यात्रा का रिकार्ड कविता है। स्पेनिश तो मैं नहीं जानता, लेकिन उसका अँग्रेज़ी-अनुवाद जो मैंने पढ़ा है उसे दुहराने की कोशिश करता हूँ—Poetry is the emotional journey of the poet, but the poem is the record of it. रिकार्ड किया जाता है यात्रा ख़त्म होने के बाद, कहीं बैठकर। कविता जब बनकर अन्तिम रूप में हमारे सामने आती है तो उसको हम दो हिस्सों में विभाजित कर सकते हैं। एक तो इमोशनल यात्रा है और दूसरा है कविता के रूप में जो हमारे सामने है वह रिकार्ड। वैसे तो हमारे पूर्वजों ने काव्यतत्त्व के बारे में गहरा चिन्तन किया है। पहले बहुत पुराने काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी ने एक मर्म की बात कही है कि समाधि से कविता बनती है। "अन्य धर्मस्ततोन्यत्र लोक सीमा-नुरोधिना सम्यगाधीयते यत्र समाधिःस्मृतोयथा", अर्थात् एक वस्तु का धर्म अन्य वस्तु पर जब आरोपित होता है तो उस प्रक्रिया में से कविता निकलती है। एक हरा पेड़, उस पेड़ में एक कोयल कूक रही है और वह कूक बहुत मधुर है, पर कवि कोकिल को नहीं देख रहा है, सारे पेड़ को देख रहा है और उसे ऐसा लग रहा है

कि पेड़ खुद गा रहा है। यहाँ एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु पर आरोपित हो गया। इसको समाधि कहा है दण्डी ने। लेकिन समाधि को दस 'गुणों' में से एक गुण बनाकर उन्होंने अपने 'काव्यादर्श' में जैसा बताया वह मेरी राय में ग़लत है। परन्तु उनके अनुसार समाधि दस गुणों में सबसे श्रेष्ठ है। वह कहते हैं 'तदेतत् काव्य सर्वस्वम् समाधिर्नाम यो गुणः कवि सार्थः समग्रोपि तदेनमनुगच्छति।'

"अन्य काव्यशास्त्र के आचार्यों ने उसके बाद समाधि पर बहुत चर्चा की है। वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्र में इस बारे में बहुत अच्छी चर्चा की है। समाधि ही अर्थदृष्टि है। इसके बारे में उन्होंने अलग चर्चा की है। अर्थदृष्टि क्या है? 'अर्थस्य दर्शनम् दृष्टिः समाधि कारणत्वात् समाधिः।' समाधि वह चीज़ है जिससे एक व्यक्ति 'कान्सैंट्रेटेड मूड' में चला जाता है। उस वक़्त उसे एक अर्थदृष्टि मिल जाती है। समाधि एक प्रयत्न है। प्रयत्न करके ही व्यक्ति समाधि में जाता है। अर्थात् एकाग्रता की स्थिति में जाने पर उसमें एक महान् दर्शन आता है। उस दर्शन के कारण सृष्टि में जितने भी चराचर पदार्थ हैं, वे तमाम वस्तुएँ उसके दर्शन के दायरे में आ जाती हैं। यही है कविता का प्रारम्भ। यही है समाधि जिसके बारे में भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने व्यापक चर्चा की है। उनके बाद के लोग भी इसका ज़िक्र किये बिना आगे नहीं बढ़े। यह बड़ी दिलचस्प बात है कि फ्रेंच रचयिता बालज़ाक ने इसी स्थिति को second vision कहा है और रूस के विख्यात कवि मायाकौव्सकी ने इसे The celebrated absent-mindedness of the poet कहा है।

"इसी सन्दर्भ में इस चिन्तन की एक और कड़ी बताता हूँ। रुद्रट काव्यशास्त्र के एक महान् आचार्य हैं। उनके 'काव्यालंकार' में एक श्लोक है—'मनसि सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधाभिधेयस्य अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति। यस्यां असौ शक्तिः', प्रतिभा की वजह से कविता उत्पन्न होती है। यदि उत्पन्न होती है तो वह प्रतिभा कैसे मिलती है—जन्मतः या प्रयत्नतः? इससे आपका प्रश्न बिल्कुल साफ़ हो गया। यहीं पर समाधि की भूमिका प्रत्यक्ष होती है। रुद्रट के श्लोक में यही समझाया गया है। समाधि में प्रविष्ट हो जाने पर उस मानव में सृष्टि की समस्त वस्तुएँ अनेक रूपान्तरों में दिखाई देने लगती हैं। जैसे पेड़, पेड़ ही नहीं दिखता। लेकिन एक गाता हुआ वाद्य दिखता है। यह करिश्मा समाधि से ही होता है। रुद्रट के अनुसार उस वक़्त अभिव्यक्ति के लिए अक्लिष्ट यानी सरल और सुगम शब्द भी अपने-आप स्वयं उत्पन्न होकर निकलेंगे, और यह भी कहना चाहूँगा कि समाधि की जो संकल्पना है वह प्राचीन महाकवियों के अनुभव से प्रमाणित हुई है जैसा कि रामायण में कहा गया है कि वाल्मीकि ने समाधि में जाकर रामायण लिखी है—"ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः" (बाल-

काण्ड--तृतीय सर्ग: 6ठा श्लोक:) वैसे ही वेदव्यास ने भी समाधि में जाकर महाभारत लिखा है—'प्रविश्य योगं ज्ञानेन सोपश्यत सर्वमन्तत:' (सम्भव पर्व) महान् कवियों का यह अनुभव सामने रखकर हमारे दण्डी, वामन आदि शास्त्रकार समाधि के सिद्धान्त पर पहुँचे हैं। इस विषय पर काव्य मीमांसा के रचयिता राजशेखर की अन्तिम बात देखिए—'समाधिरान्तर: प्रयत्न: बाह्यसत्वाभ्यास:'

इस गम्भीर विवेचन के दौरान हम इस बिन्दु पर पहुँचे कि समाधि की अवस्था जब प्राप्त हो जाती है तब कवि द्वारा कविता का जन्म होता है और समाधि की स्थिति अपने-आप नहीं, प्रयत्न से ही मिलती है। चर्चा को शास्त्रीयता से निकालने के प्रयास में मैंने कहा, "समाधि के बारे में सुनते हैं कि जब साधना के द्वारा व्यक्ति समाधि की स्थिति में पहुँच जाता है तब नियमित अभ्यास से एक स्थिति ऐसी भी आ जाती है कि समाधि उसके लिए सहज हो जाती है। जब कवि परिपक्वता की स्थिति को, वैशिष्ट्य की स्थिति को पहुँच जाता है, तब मैं समझता हूँ, ऐसे अनेक अवसर आने चाहिए जब कविता अपने-आप, अनायास ही प्रस्फुटित होने लगे।" शेषेन्द्र जी बोले, "लेकिन मैं इस बात को ऐसा समझता हूँ कि कविता अनायास प्रस्फुटित नहीं होगी। लेकिन समाधि में कवि जब चाहे तब चला जा सकता है। पहले पहल समाधि में जाने के लिए तो प्रयत्न करना ही होगा। प्रयत्न करते-करते समाधि में जाना उसके लिए आसान हो जाता है। समाधि में पहुँचना तो कभी अनायास हो सकता है, लेकिन कविता जो समाधि से ही प्रस्फुटित होती है, हर समाधि में वह निकले ही, यह ज़रूरी नहीं। उसके लिए प्रयास अपेक्षित है, कविता जो सरल और निसर्ग रूप में सामने आती है, उसकी सिद्धि भी प्रयत्न साध्य ही होती है, यह सिद्ध होता है। अगर मर्मदृष्टि से ग़ौर किया जाए, मुझे अक्सर यह महसूस होता है, जब भी कुछ लोग कहते हैं कि उनकी कविता आशुवेग से अनायास आ गयी है तो मुझे लगता है कि वे लोग छद्म बातें कह रहे हैं और वे साहित्य में बेईमान हैं।"

मैंने कहा, "सिद्धान्त पर काफ़ी चर्चा हो चुकी। अब सीधे आपकी अपनी रचना-प्रक्रिया पर आते हैं। आपने कहा कि बचपन में तो आप कवि नहीं थे, साधना के द्वारा आप कवि बने। पर जब इस स्थिति में आप आ गये कि कविता आपके लिए सिद्ध हो गयी तो उस स्थिति में आपकी कुछ कविताएँ ऐसी भी निकली होंगी जिनके लिए आपको चेतन स्तर पर आयास नहीं करना पड़ा हो, पंक्ति दर पंक्ति वे भीतर से अपने-आप बाहर आ गयी हों। मैं चेतन की बात कर रहा हूँ। अवचेतन प्रक्रिया तो सायास होती नहीं।" वे बोले, "चेतन आयास जो आपने कहा वह बहुत बढ़िया अभिव्यक्ति है। मेरे ख़याल में चेतन आयास जीवन का आयास है। दैनन्दिन जीवन के तूफ़ानों में जब कवि गुज़रने लगता है तो उन तूफ़ानों की इन्टेंसिटी बढ़ती जाती है। आहिस्ता-आहिस्ता जैसे कवि का व्यक्ति

जीवन-यात्रा में आगे बढ़ता है, तूफ़ानों में उसका तल्लीन हो जाना भी बढ़ता जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि कवि बिल्कुल बीमार हो जाता है। हज़ार किस्म की दैहिक और मानसिक परेशानियाँ होती हैं जिनकी वजह से कवि नित्यप्रति का जीवन यानी लौकिक जीवन जो हर इंसान को जीना पड़ता है, वह उसके लिए बोझिल और बेकार हो जाता है। उस जीवन को जीने के लिए ताक़त कम हो जाती है। उन तूफ़ानों में से, या उनकी अनुभूति से कविता बनती है।

जब मैंने अपनी काव्यकृति 'मेरी धरती, मेरे लोग' लिखी तो वह दस दिन में ही लिख डाली। लेकिन उन दस दिनों का जो छोटा-सा क्षण आँखों के सामने आता है उसके पीछे मेरी तमाम उम्र की परेशानियाँ व तूफ़ान हैं जिनमें मैं गुज़रा हूँ। यह मेरी सारी इमोशनल यात्रा है जिसे रिकार्ड करने में तो दस दिन लगे, पर उसे भोगने में शायद मेरी पूरी उम्र लग गई।"

मैंने जोड़ा, "हमारे यहाँ तो मानते हैं कि पूर्व जन्म के, बल्कि जन्म-जन्मातर के, अनुभव भी उसमें आ गये होंगे।" सहमति व्यक्त करते हुए वे बोले, "हाँ, ठीक है। पूरे उसमें सिमट आए होंगे। मुझे ग़ालिब याद आते हैं। उन्होंने कहा है, 'आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक।' कितनी बड़ी बात है मेरे उस काव्य के पीछे। मैं गवर्नमेंट का मुलाज़िम रहा हूँ। उस दिन मेरे ऊपर का जो अफ़सर था, उसके पास एक फ़ाइल लेकर गया था। वह आदमी बिल्कुल सख्त, अनुशासित और क्रूर किस्म का आदमी था। उसके चेहरे पर भी यही लक्षण दिखते थे। अगर आप पर्फेक्ट से पर्फेक्ट चीज़ बनाकर उसके सामने रखें तो भी उसमें कुछ-न-कुछ दोष निकालकर कुछ हरकतें करना उसकी आदत थी। मैं जब उसके कमरे में गया तो उसने एक प्रश्न पूछा और एकदम वह क्रोध में फूट पड़ा, जैसे एक ज्वालामुखी फूटता है और उसने वह फ़ाइल फेंक दी। मैं तो बहुत स्वाभिमानी आदमी हूँ। जब उस क़िस्म का बर्ताव कोई दिखाता है तो चाहे वह राष्ट्रपति हो या सारी दुनिया का मालिक, मैं बिल्कुल परवाह नहीं करता। मुझे ख़ुद मालूम नहीं मैं क्या करता! तो मैं फ़ाइल वैसे ही छोड़कर कमरे से निकल पड़ा और सीधा घर आ गया। मेरी पत्नी मुझे देखकर बहुत दुखी हुईं। मैंने पूरी घटना उन्हें तफ़सील से सुनाई। मेरी तबीयत पूरी बिगड़ गई तो उन्होंने मुझसे छुट्टी की अर्जी लिखवाकर भिजवा दी और झट से विमान टिकट खरीदकर हम दोनों बंगलौर के लिए चल दिये।

"जब अपने घर से एयरपोर्ट जाने के लिए मोटरगाड़ी पर हम बैठे तब मैं उस घटना की वजह से स्वस्थ नहीं था, बीमार आदमी की तरह बैठा हुआ था। सारी दुनिया मुझे दुनिया नहीं दिख रही थी, बिल्कुल एक अलग प्रकार का दृश्य था। जिस समाधि की चर्चा मैंने पहले आपसे की अब उसी की बात कहता हूँ। उस समय मुझे सब कुछ बिल्कुल अजीब दिख रहा था। जैसे-जैसे गाड़ी रास्ते पर

दौड़ रही थी, मुझे पेड़ पेड़ नहीं दिख रहा था, इन्सान इन्सान नहीं दिख रहा था। रास्ते अलग दिख रहे थे। पूरा दृश्य ही बदल गया था। सचिवालय के बाज़ू से जब हमारी गाड़ी निकल रही थी, उस वक़्त उसे देखकर एक ज्वालामुखी के समान उबलते हुए मैंने कहा, 'मेरा हाथ उठता है उस विशाल भवन को अपने एक मुष्ट्याघात से खण्ड-खण्ड करने के लिए वह इतनी सशक्त पंक्ति थी कि मेरी पत्नी ने कहा अरे आप इसे लिख लीजिए। मोटर आगे बढ़ी तो एक बड़ा झाड़ दिखा। वह अप्रैल का महीना था और वह झाड़ फूलों से भरा हुआ था। जब मैंने फूलों को देखा तो मुझे ऐसी नफ़रत हुई कि मानो वे ग़लीज़, गन्दी नागरिकता की हवा में साँसें ले रहे हैं। कुछ आगे जाने पर मेरी पत्नी ने कहा, 'आप फूलों को देखकर इतनी नफ़रत क्यों करते हैं?' मैंने कहा, 'मुझे कविता नहीं चाहिए, मुझे हज़ारों भूकम्प से भरा बम चाहिए।' ऐसे ये पंक्तियाँ बनती गईं और पत्नी के इसरार पर इन पंक्तियों को मैं काग़ज़ पर लिखता गया और जब मैं हवाई जहाज़ में बैठ गया और वह उड़ने लगा तो एकदम मुझमें एक राहत, एक सुकून आ गया। इस विष-समान हवा को हैदराबाद में पीछे छोड़कर हवाई जहाज़ में उड़ जाने से मेरी आत्मा के फेफड़ों को इतना आराम मिल रहा था कि मैं बयान नहीं कर सकता। बंगलौर पहुँचते ही मैं रात में सो गया और सुबह उठते ही सामने विराट सागर जैसा विशाल आसमान था और दूर की पहाड़ियों में से सूरज निकल रहा था। वह इतना प्रशान्त दृश्य था कि एकदम अचानक एक पंक्ति फूटी : 'उठता है प्रत्यूष से एक हाथ / काल के श्रमिक का हाथ / वह बढ़ता है और जनजीवन के क्षेत्रों के शोणित और स्वेद में उतरकर,/फिर उठता है फिर वह दिगन्तों तक सिन्दूर छिड़कता जाता है।' उस पंक्ति को मैंने 'मेरी धरती मेरे लोग' की शीर्षक पंक्ति बनाकर रखा है। मेरी देखरेख में इसका जो हिन्दी-अनुवाद आया है, ओमप्रकाश निर्मल द्वारा, उसके बारे में ख़ुद कवि के नाते एक वक्तव्य दे रहा हूँ कि उस हिन्दी-अनुवाद को पढ़कर यही समझना चाहिए कि वह मूल ग्रन्थ पढ़ रहा है। उसमें कोई तबदीली नहीं है। बिम्ब, प्रतीक, भाषा का शब्द पक्ष, मुहावरा सभी कुछ हिन्दी में आ गया है। मैंने खुद अनुवादक के साथ बैठकर हर पंक्ति का, देख-परख कर, अनुवाद करवाया है।"

इसी क्रम में मैंने पूछा, "अपनी पुस्तक 'इन डिफेन्स ऑफ पीपल एण्ड पोएट्री' में आपने एक जगह कविता के जन्म की उपमा बीज से पौधे के जन्म से दी है। कविता के जन्म की उपमा बच्चे के जन्म से तथा अभिव्यक्ति के लिए कवि की छटपटाहट की प्रसव-वेदना से उपमा देना क्या अधिक संगत न होगा?"

शेषेन्द्रजी बोले, "संगत होगा, मैं मानता हूँ, लेकिन उससे भी सुसंगत हो सकता है जो मैंने कहा है। कवि एक बीज है। बीज से पौधा बनने के लिए बहुत खाद की ज़रूरत होती है, मिट्टी की ज़रूरत होती है और वायुमण्डल की ज़रूरत

होती है। जिस धरती पर एक बीज बोया गया, उस धरती का गुण उसमें से निकलता है। यह भी एक कमाल है। ये सारी चीज़ें हैं एक बीज के पीछे जिनसे वह पौधा बनता है। वैसे ही कवि का समाज, उसके समकालीन सन्दर्भ, देश के ऐतिहासिक सन्दर्भ, सामाजिक, राजकीय और आर्थिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसकी कविता को रूपायित करते हैं।"

उनके काव्य 'शेष ज्योत्सना' की एक कविता का हवाला देते हुए मैंने पूछा, " 'Agony of night' में आपने कहा है कि 'Life from which illusion withdraws / is akin to lotus pond deserted by rain / eyes / from which dreams have flown away'. इसी प्रकार क्या आप यह मानते हैं कि काव्य में भी स्वप्निलता काम्य है, कोरा यथार्थ नहीं।"

प्रश्न का स्वागत करते हुए शेषेन्द्रजी बोले, "यह बहुत सुन्दर प्रश्न है। इसमें काव्य की नज़ाकत भी शामिल है। काव्य मात्र स्वप्न नहीं है और मात्र यथार्थ भी नहीं। जब इन्सान स्वप्निलता और यथार्थ के द्वन्द्व में से गुज़रता है उस वक़्त काव्य का रूप उभरता है। काव्य एक सन्धिकाल का फल है। कवि सदैव बेहतर और उन्नत दुनिया के लिए स्वप्न देखता है। दुनिया में जो भी वास्तविक स्थिति मौजूद है, उससे वह सन्तुष्ट नहीं होता, उससे ऊपर उठना चाहता है। उससे बेहतर कैसे बने, ऐसे वह ख्वाब देखता रहता है। अपने लिए ही नहीं, दुनिया के लिए भी। इसी वजह से उसमें एक संघर्ष पैदा होता है। इस प्रकार एक ओर स्पप्न है तो दूसरी ओर वास्तविकता है। इन दोनों की टकराहट से जो चिनगारी निकलती है, वही काव्य है एक तरह से।"

चर्चा को शेषेन्द्रजी की प्रसिद्ध काव्य-कृति 'मेरी धरती मेरे लोग' पर लाते हुए मैंने कहा, "वह मानव-मन की अखण्ड अन्तश्चेतना का काव्य है। इस अप्रतिम काव्य में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की विभीषिका का जन-मानस के हृदयविदारक मोहभंग तथा उससे उत्पन्न कटुता-कुण्ठा के वातावरण को सशक्त वाणी मिली है: 'जब किसी ने पुकारा उषा, उषा / तो गाँव के तमाम लोग / देखने के लिए घरों से बाहर आ गये।···तमाम गाँव के दरवाज़े / बड़ी उत्सुकता से खुले किन्तु उन्होंने पाया कि सूर्य के बजाय वहाँ सूर्यग्रहण है।' बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति है। आगे लिखा है—'यहाँ अब कोई आशा नहीं है / जीवन यहाँ एक सड़े हुए फल की तरह शिथिल है / इस विषवृक्ष की कलम कहीं भी लगाने से / स्वादिष्ट फल नहीं देगी / इसे निर्मूल करना ही हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है।' इसमें आपने जिस सम्पूर्ण क्रान्ति का ही नहीं बल्कि विस्फोटक क्रान्ति का आह्वान किया है, वह बौद्धिकता या अकर्मण्यता के स्तर पर सम्भव नहीं है, यह आपने भी माना है। तो फिर यह क्रान्ति कैसे आएगी, उसे कौन लाएगा और उसमें लेखक की भूमिका क्या होगी?"

शेषेन्द्र जी बोले, "मैं ख़ुद के अनुभव से आपको बताता हूँ। पुस्तक की क्या भूमिका रही समाज में, पुस्तक ने व्यक्ति को बदला है या नहीं ? इस विषय में भारत में और पश्चिम में भी खूब चर्चा हुई है। मैं समझता हूँ कि यदि इन्सान के इतिहास को शुरू से हम ग़ौर से पढ़ें तो यह साबित होता है कि पुस्तक ही इन्सान को बदलती आई है। अगर पुस्तक समाज में नहीं होती तो इन्सान शुरू में जैसा था वैसे का वैसा ही रह जाता गुफाओं में। लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता इन्सान में जो पशुत्व है, उसे पुस्तक ही निकाल लाई है पालिश करते-करते। काव्य पढ़ते समय पाठक की चित्तवृत्ति काव्य में वर्णित विषयों से आकर्षित होकर, संवाद पाकर काव्य के प्रति अभिमुख हो जाती है। 'काव्ये हृदयसंवादवशात् तावत् निमग्ना कारिका भवति चित्तवृत्तिः' (अभिनवगुप्त) इस प्रकार पुस्तक पाठक को बदल देती है। इस बदलाव में समय लगता है।"

अगला प्रश्न मैंने रचना-प्रक्रिया के दौरान आए मानसिक बदलाव को लेकर किया, "क्या आप अपनी किसी ऐसी कविता अथवा काव्य का नाम बता सकते हैं जिसे रचने के बाद आप वही नहीं रहे हों जो उसे रचने से पहले थे, यानी जिसकी रचना के दौरान आपके अपने भीतर कोई उल्लेखनीय परिवर्तन आया हो ? कवि ही अपनी कविताओं को नहीं रचता, उसकी रचनाएँ भी निरन्तर उसे रचती रहती हैं और उसे पता तक नहीं चलता।" वे बोले, "यह बहुत मर्म की बात है काव्य-रचना में। काव्य कवि को बदलता है या कवि काव्य को बदलता है, यह सोचने की बात है। लेकिन मैं अपनी अनुभूति के आधार पर कहता हूँ कि कवि ख़ुद बदल जाता है रचना के वक़्त। इसका मतलब यह नहीं कि रचना उसको बदलती है। उसके जीवन के तूफ़ान या तत्कालीन गहरी अनुभूतियाँ जो उस समय उस पर हावी हो रही हैं, उनकी वजह से वह बदल जाता है। वह तबदीली भी मामूली तबदीली नहीं होती। वह बीमार हो जाता है। कविता जब खत्म होती है उस वक़्त इतना बीमारी से गुज़रा महसूस करता है कि वह मरने के बराबर है। इस अर्थ में यह कहना सही है कि कवि हर एक रचना के जन्म के बाद मरता है, और फिर पुनर्जन्म लेता है सूर्योदय की तरह···। यह क्रम चलता रहता है।"

चर्चा को समेटते हुए मैंने अन्तिम प्रश्न किया, "आजकल साहित्यिक पुरस्कारों की एक होड़-सी लगी हुई है। आपके विचार से क्या इनसे सच्ची साहित्य-सर्जना को प्रोत्साहन मिलता है या साहित्येतर प्रतिस्पर्धा को ही प्रश्रय मिलता है ?" इन पुरस्कारों के प्रति शेषेन्द्रजी की प्रतिक्रिया उग्र थी, वे बोले, "साहित्य में पुरस्कार लेखक की आवाज़ बन्द करने के लिए दिये जाते हैं, यह मैं नहीं समझता। वैसा वक्तव्य लेखक को एक मासूम लेखक के रूप में पेश करता है। लेकिन लेखक के प्रयत्न या प्रयास के बिना कोई पुरस्कार अपने-आप नहीं मिलता। अब यह

इतनी खुली बात है कि लेखकों की क़तार बहुत लम्बी हो गई है पुरस्कार के दरवाज़ों पर। उसमें राजनीतिक नेताओं के अनुग्रह की सख्त ज़रूरत होती है और सही लेखक के लिए इस व्यूह में प्रविष्ट होना बड़ी शर्मनाक बात है। पुरस्कार आज ऐसा एक छद्म व्यूह है जिसके एक तरफ़ करीब के कक्ष में राजकीय नेतृत्व है तो दूसरे कक्ष में प्रेस और पब्लिसिटी है और उसके बाद भगवान जाने कौन-कौन हैं, पता ही नहीं लगता। जैसे नौकरियाँ दी जाती हैं, वैसे ही ये पुरस्कार जाति, प्रान्त, भाषा आदि किस्म-किस्म के असाहित्यिक कारणों पर दिए जाते हैं। रचना का गुण इस दंगे-फिसाद में कहीं का नहीं रहता। लेकिन सच्चा कवि पुरस्कार को नज़र में रखकर नहीं लिखता, वह अपने देश के लिए लिखता है, अपने लोगों के लिए लिखता है।"

(हैदराबाद, 25-2-1984)

•